शम्भुराजा : मान लिया! आप उसे महज़ 'मानना' समझती हैं? युवराज्ञी, आप ऊँचे घराने में जनमीं; माँ-बाप की गोद का लाड़-प्यार पाकर बड़ी हुईं; आज तक आबासाहब की लाड़ली बहूरानी बनकर शानोशौकत से रायगढ़ में रहीं! हमारी अनाथ ज़िन्दगी की दर्दभरी दास्तान आप नहीं समझ सकतीं। जब से समझ पाई है, तब से हम जानते हैं सिर्फ आबासाहब की आँख की धाक! हमारे मन पर खुदी हुई है उनके होंठ की खामोश शमशीर! हमारे सीने में खलबली मचाता है उनका छत्र, उनका सिंहासन, उनकी राजमुद्रा! (अचानक एक पुरानी याद ताज़ा होकर आती है इसलिए व्याकुल होकर) आगरे से चल निकलने की घड़ी याद आती है तो खून खौलने लगता है, दिमाग फट जाता है, आँतें टूट जाती हैं। (पल भर रुककर, जैसे वह दृश्य आँखों के सामने मौजूद हो।) आठ बरस का एक फूल-सा बच्चा दिखाई पड़ता है जो महाराज के पीछे जंगल-पहाड़ों में, धूप-बरखा में रात-दिन दौड़ रहा है। कभी बुखार से जल रहा है, कभी पैरों के छाले तक सहला नहीं पा रहा है—पर चूँ नहीं करता। आधी रात को मथुरा के एक ब्राह्मण के घर मुकाम करना पड़ा। विचार-विनिमय शुरू हुआ। निराजीपन्त सलाह देते हैं: 'महाराज, सही-सलामत चल निकलना हो तो युवराज को यहीं छोड़कर दौड़ लगानी होगी!' भीतर के कमरे में थकान से बेहोश-सा पड़ा बच्चा ये शब्द सुनता है और गिरते-पड़ते बाहर की तरफ दौड़ता है; महाराज की कमर से लिपटकर वह डरी आवाज़ में बिलख उठता है: 'आबासाहब, आबासाहब, हमें अकेले छोड़कर न जाइए; आबासाहब अकेले न जाइए!' आबासाहब एक शब्द तक नहीं कहते। नन्ही-नन्ही बाँहों की पकड़ फौलादी उँगलियों से छुड़ाते हैं और भीतर के कमरे की ओर उँगली उठाते हैं। इत्ता-सा बच्चा, उसके होश गुम हो जाते हैं। वह कि जो बिना शिकायत सैकड़ों कोस दौड़ता रहा, दहलीज पार करते-करते लड़खड़ाकर गिर जाता है। और महाराज उसी रात चले जाते हैं—बिना मिले, बिना बोले! (ज़रा रुककर) युवराज्ञी, हम सिर्फ एक सवाल पूछते हैं: अगर हम अपने बेटे के साथ यही सुलूक करते तो आप किस तरह हमारी खातिर-तवाज़ा करतीं?

B

नाना : था नहीं ढोंगियों का यह देश... पर अब हो गया है... अंगों में मस्ती हो तो करके दिखाओ बगावत तुम इन ढोंगों के विरुद्ध... 'लो टक्कर...सबने सिर्फ एक शिकायत पेटी बनाकर रख दिया है इस देश को... जो कोई उठता है, अपनी शिकायत डाल देता है इसमें... पेटी खोलने की जिम्मेदारी किसी पर नहीं ! अमेरिका में गंगा बह रही है... उसमें हाथ धो लो, बस इतना ही है तुम्हारा शौर्य... तुमने क्या किया ? वहां की नरम हरी घास पर चरते रहे, इतना ही ना ? हिम्मत है तो यहां कुछ करके क्यों नहीं दिखाते ?... जरा अपनी बुद्धि पर जोर डालो... शक्ति... कल्पना... का यहां भी कुछ करो उप- योग... अपने देश के लिए भी !

संध्या छाया, जयवंत दलवी